* सत्योदय *

(मासिक पत्र) अग्रिम वार्षिक मूल्य १॥) रुपया।

यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि आजकल जैन समाज का अधःपतन होरहा है। इसके जो कारण हैं और उनके निवारण का जो सत्य उपाय है उसकी हम खोज नहीं करते हैं और अन्धविश्वास में पड़ते चले जाते हैं। अतः यह आवश्यक है कि हम उस सत्यमार्ग की खोज करें और उस पर आरूढ़ होकर उन्नति के शिखर तक पहुंचें तथा धार्मिक या सामाजिक विषयों में आदर्श होजावें। अतः इसी उद्देश्य की पूर्त्ति के वास्ते यह पत्र निकाला गया है आशा है कि सज्जनगण इसे अपनावेंगे। इसमें जैनसमाज के तथा अन्य भी बहुतसे नामी नामी लेखकों के लेख रहते हैं और अपने नाम के सादृश्य ही इसकी नीति है जिसके लिये यह निर्भय होकर सदैव सत्यमार्ग का पूर्ण अनुयायी रहेगा। अतः आप शीघ्र ही ग्राहकश्रेणी में नाम लिखा कर १।=) की वी० पी० से भेजने की आज्ञा दीजियेगा। नमूना मुफ्त।

* नवीन पुस्तकें *

आदिपुराण समीक्षा प्रथम भाग।

लेखक—बा० सूरजभानु वकील। इसमें आदिपुराण की संक्षिप्त कथा लिख कर फिर उसकी समालोचना की गई है जो अवश्य द्रष्टव्य है। इसमें जिनसेनाचार्य्य की लेख शैली का नमूना है। (की० ।) आना।

आदिपुराण समीक्षा द्वितीय भाग।

इस में गुणभद्राचार्य्य की लेख शैली का नमूना है। की० ।-) आना।

मिलने का पता:—

चन्द्रसेन जैन वैद्य, चन्द्राश्रम—इटावह

श्रीपाल चरित्र की समालोचना।
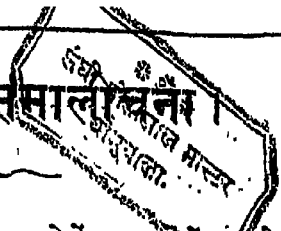
श्रीपाल राजा का रास श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों में बहुत प्रेम के साथ पढ़ा जाता है और सन्मान की दृष्टि से देखा जाता है इसलिये इसपर विशेष-रूप से प्रकाश डालने की आवश्यकता हुई है। यद्यपि दोनों सम्प्रदायों की ओर से श्रीपाल के जो चरित्र प्रसिद्ध हुए हैं उनमें कहीं कहीं भेद पाया जाता है; तथापि मुख्य वस्तु, मुख्य वर्णन दोनों में समान है। आगरा निवासी परिमल नामके कवि ने जो कि दिगम्बराम्नाय के थे—हिन्दी पद्यों में श्रीपाल राजा की कथा लिखी थी। नरसिंहपुर निवासी मास्टर दीपचन्द्रजी ने उसी का हिन्दी अनुवाद तैयार किया है और 'दिगम्बर जैन' के ग्राहकों को यह पुस्तक स्वर्गीय सेठ प्रेमचन्द मोतीचन्द की स्वर्गीय माता के स्मरणार्थ; उसी के खर्च से यह पुस्तक भेट में दी गई है। जो उक्त पत्र के ग्राहक नहीं हैं; उन्हें यह पुस्तक १=) एक रुपये दो आने में मिल सकती है। पुस्तक का क़द देखते कहना पड़ता है कि यह मूल्य बहुत ज्यादा है और पुस्तक का विषय-वर्णन उपदेश देखते मैं कह सकता हूं कि यदि ऐसी पुस्तकें मुझे मुफ्त में दी जायँ और साथ ही उनके पढ़ने के एवज में एक अच्छी रक़म भी ऊपर से दीजाय तथापि मैं ऐसी पुस्तकें पढ़ना कभी पसन्द न करूं। प्रसिद्ध पुरुषों की तरह मुझे यह पुस्तक समालोचनार्थ मिली है। 'आद्योपांत पढ़कर किसी पुस्तक की समालोचना करना' यह समालोचकों का पवित्र कर्त्तव्य है। इस कर्त्तव्य का पालन करने के लिये मेरी इच्छा के विरुद्ध भी मुझे इस पुस्तक को पढ़ना पड़ा है और पुस्तक पढ़कर सविस्तर आलोचना करने की मैंने इसलिये आवश्यकता समझी है कि जो व्यक्ति मेरे विचारों के अनुकूल हैं उन्हें ऐसी पुस्तकें—निर्माल्य कथायें—पढ़ने में अपना अमूल्य समय बरबाद न करना पड़े।

पुस्तक की भाषा के सम्बन्ध में मैं कुछ कहना नहीं चाहता। भाषा प्रायः शुद्ध है। साथ ही उन अलङ्कारों की खूबियां भी इसमें अच्छी दिखाई देती हैं; जो कि भारतके प्राचीन कवियों का सर्वस्व था। मगर 'जो जेवर कान तोड़ता है वह किस काम का ?' 'जो सौन्दर्य्य प्राण लेनेवाला हो उसको कौनसा बुद्धिमान स्वीकार करेगा ?, प्रायः देखा गया है कि जैनों के बहुत से रास-कथा-ग्रन्थ और ब्राह्मणों की बहुत सी कथायें धर्म के नाम से अधर्म, अनीति और कायरता सिखाने वाली हैं, और श्रीपाल का चरित्र इस कथनका पूरा प्रमाण है।

कथा का सार यह है—चम्पापुर के राजा अरिदमन के कुन्दप्रभा नाम की रानी थी और वीरदमन नाम का भाई था। रानी को उत्तम स्वप्न आया; जिससे यह सूचित किया गया कि वह एक चरमशरीरी सर्व-गुण-सम्पन्न, धर्मकी धुरा, मोक्षाधिकारी पुत्र को जन्म देगी। पीछे से बालक उत्पन्न हुआ उसका नाम 'श्रीपाल, रक्खा गया। आठ वर्ष की आयु में उसका उपनयन संस्कार कराया गया और फिर विद्याभ्यास के लिये वह गुरु के घर भेज दिया गया। प्रथम उसे नवकार मन्त्र पढ़ाया गया। "थोड़े ही दिनों में तो वह तर्क, छन्द, व्याकरण, गणित, सामुद्रिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, गायनशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, धनुर्विद्या, शस्त्रविद्या, तैरने की विद्या, वैद्यक, कोकशास्त्र, वाहनविद्या, नृत्यविद्या आदि तमाम विद्या और कलाओं में निपुण होगया। आगम और अध्यात्मविद्या का भी वह पारगामी बन गया,, थोड़े ही दिनों में संसार भरकी सारी विद्यायें-सारे विज्ञान (Sciences) और सारी कलायें (Arts) सीखी जा सकती हैं और उनमें पूर्णता प्राप्त की जासकती है यह बात तो जैनियों के सिवाय अन्य लोग तो शायद मानने को तैयार नहीं होंगे; परन्तु जैन कवियों की-काल्पनिक शक्तियों की बलिहारी है कि जिन्होंने ऐसी कल्पनायें की हैं। "जहां न पहुंचे रवि, वहां पहुंचे कवि,, यह कहावत शायद इन्हीं के लिये होगी।

विद्याभ्यास कर श्रीपाल माता पिता के पास आया और राज्य कामों में चित्त लगाने लगा, थोड़े दिनों के बाद राजा ने श्रीपाल को राज्य देकर धर्मध्यानमें समय बिताना प्रारम्भ किया और कुछ ही दिनों बाद उसका देहान्त होगया। राजा श्रीपाल "न्याय और नीति पूर्वक प्रजा का पालन करता था,, यह बात दुष्ट कर्म सहन न कर सका; इसलिये उसने राजा के सुन्दर शरीरसे कुष्ट (कोढ़) रोग उत्पन्न कर दिया। श्रीपाल के शरीर से लोहू राध बहने लगे और उसे बहुत वेदना होने लगी। उसके खास अङ्ग-रक्षक और साथियों को भी-जिसमें प्रधान, सेनापति, मन्त्री, पुरोहित, कोतवाल, फौजदार, न्यायाधीश आदि भी शामिल थे-यही कुष्टरोग होगया। विशेष क्या कहें इनके शरीर से दुर्गंध निकलकर जिस दिशा में जाती थी उसी दिशाके लोग भी इसी रोग के चक्कर में आजाते थे। अन्तमें शहर के मुख्य मुख्य लोग मिलकर श्रीपाल के चाचा वीरदमन के पास गये। वीर दमन ने श्रीपाल से मिलकर उसे अपने सातसौ पुरुषों सहित-जो कि श्रीपाल के अङ्ग रक्षकादि थे और कोढ़ी होगये थे-नगर से बहुत दूर करके किसी वन में भेज दिया और आप राज्य का कार्य करने लगा।

इसीके दरमियान उज्जयनी नगरी के राजा पहुपालकी दो लड़कियों (सुन्दरी और मैनासुन्दरी) का कुछ इतिहास पाठकों के सामने उपस्थित किया जाता है। दोनों कन्यायें सुन्दर थीं; परन्तु बड़ी का यह दोष था कि वह जैनेतर गुरु के पास पढ़ी थी और पिता के पूछने पर उसने अपने योग्य पतिकी इच्छा प्रकट की थी। छोटी मैनासुन्दरी जैनसाध्वी के पास पढ़ी थी और पिताने जब पति पसन्द करने के लिये उसे साग्रह कहा तब उसने पिता के सामने यह कहने की सभ्यता बताई थी कि पति पसन्द करना 'अधर्म' है। इन दोनों लड़कियों से पहिले राजाने पूछा था—"तुम कौन से गुरु के पास पढ़ना चाहती हो ?,, सुरसुन्दरी ने शिवगुरु नाम के ब्राह्मण पण्डित के पास पढ़ने की इच्छा प्रकट की और वह उसके पास भेज दीगई। मैनासुन्दरी ने उत्तर दिया था—"मैं तो जिनचैत्यालय में जिनगुरु के पास से विद्या सीखना चाहती हूं,, इसलिये वह उसकी इच्छा अनुसार एक 'आर्जिका, (आर्या जैन साध्वी) के पास पढ़ने के लिये भेज दी गई।

पहिली पुत्री सुन्दरी के विषय में कथा लेखक केवल इतना ही लिखते हैं "ब्राह्मण गुरुने उसको अनेक प्रकार की कलायें (Arts) चतुराइयों (Wisdom) और विद्याएं (Sciences) सिखाई,, दूसरी ब्राह्मी के लिये जरा विस्तार के साथ इस तरह लिखता है—"पहिले ॐकार मन्त्र पढ़ाकर थोड़े ही दिनों में परम तपस्विनी आर्जिका ने कुमारिका को शास्त्र, पुराण, सङ्गीत, ज्योतिष, वैद्यक, तर्कशास्त्र, सामुद्रिक, छन्द, आगम, अध्यात्म, नृत्य, नाटक आदि सारी विद्याओं का और अठारह मुख्य भाषाओं का ज्ञान दे दिया, तथा सम्पूर्ण कलाओंमें इसे निपुण बना दी। बादमें उसने (मैना ने) गुरु के पास जाकर चार ध्यान सोलह कारण भावना, दश लक्षण और रत्नत्रयादि धर्मों और व्रतोंका स्वरूप सीखा।

यहां सब से पहिले यह प्रश्न उपस्थित होता है कि एक कन्या थोड़े ही दिनों में क्या उक्त सब प्रकार की विद्यायें सीख सकती है ? कन्या या जवान के सीखने की बात तो अलग रही; परन्तु आयु भर कोशिश करके भी कोई ऐसी महान् विद्यायें और वे भी एक दो नहीं संख्याबन्ध विद्यायें सीख सकता है ? दूसरा प्रश्न यह है कि छोटीसी कन्या को आर्जिकाने शास्त्र, आगम, अध्यात्म सारे तो सिखा दिये थे फिर गुरु के पाससे ध्यान, दश लक्षण आदि धर्म का स्वरूप सीखना कैसे अवशेष रह गया था क्या अध्यात्म में और शास्त्रों में धर्म का स्वरूप गर्भित नहीं होजाता है ? शायद उस काल में शास्त्र और अध्यात्म भिन्न भिन्न तरह के होते होंगे।

एक दिन राजा जब अपने मन्त्रियों सहित बैठा था, तब उसने अपनी पुत्रियों को बुलाया और उनके ब्याह सम्बन्धी विचार करने लगा। उसने पहिले अपनी बड़ी

लड़की सुन्दरी को जो ब्राह्मण गुरु के पास पढ़ी थी और कथाकार के कथनानुसार वह सर्व कलायें, सर्व विद्यायें, सर्व चतुराइयां, जानती थी पूछा—"पुत्री तेरा लग्न किस के साथ करूं ? तुझे कौनसा पति पसन्द है ?,, सुन्दरी ने उत्तर दिया—"मैं शांबीपति हरिवाहन राजा को जो सर्व-गुण-सम्पन्न, रूपवान और बलाढ्य वीर है पसन्द करती हूं,, राजाने इस बात को स्वीकार किया और थोड़े ही दिनों में कोशांबीपति के साथ उसका विवाह कर दिया। जब राजा ने छोटी लड़की मैनासुन्दरी से भी यही प्रश्न किया था, तब जैन गुरु के पास से सीखी हुई वह कन्या प्रथम तो यह विचार करने लगी—"पिता ने ऐसे निष्ठुर शब्द कैसे उच्चारण किये अफ़सोस ! ऐसा प्रश्न करते इनको लाज भी नहीं आई शीलवान कन्या क्या कभी अपने मुंह से पति मांग सकती है !,, सच बात तो यह है कि जिन लोगों ने जिनेन्द्रदेव को नहीं पहिचाना है वे ही ऐसे प्रश्न कर सकते हैं राजाने दूसरीवार फिर वही प्रश्न किया तब वह मन ही मन सोचने लगी—"हाय राजा की बुद्धि कहा गई है, जो मुझसे इस प्रकार का निर्लज्जता पूर्ण प्रश्न कर रहा है। यदि इसने कभी मेरे जैन गुरु के वचन सुने होते तो ऐसे निर्लज्ज शब्द इसके मुंह से कभी नहीं निकलते,, फिर प्रकट रूपसे बोली "हे पिता ! मैंने गुरु के मुंहसे सुना है और शास्त्रों में पढ़ा है कि जो कन्याएं कुलवती होती हैं वे कभी अपने मुंह से पति नहीं मांगती हैं। माता पिता स्वजन सम्बन्धी या गुरुजन जिस पुरुष के साथ कन्याओं को ब्याह देते हैं वही पुरुष उस कुलवती लड़की के लिये तो कामदेव के समान होता है। पीछे वह पुरुष चाहे अन्धा हो, बहराहो, काना हो, लूला हो, लंगड़ा हो, कोढ़ी हो, रोगी हो, रङ्क हो, बाल हो, वृद्ध हो, कुरूप हो, मूर्ख हो, निर्दय हो, निर्लज्ज हो अथवा चाहे सर्व-गुण-सम्पन्न हो, कुमारिका को तो वही पति उपादेय (गृहण करने योग्य) है। हे पिता ! अपने मुख से पति मांगना निर्लजता का काम है—लोकाचार के विरुद्ध है। सुरसुन्दरी ने पति पसन्द किया यह काम बुद्धिमत्ता का नहीं है, परन्तु इसमें विचारी का इस का कोई अपराध नहीं है। यह तो कुगुरु से इसने जो शिक्षा प्राप्त की है उसी का प्रभाव है.............................गुरुजनों के हाथ से कभी पुत्री का अहित होना सम्भव नहीं है और शायद ऐसा हो भी जाय तो अपने पूर्वोपार्जित कर्म का फल समझ प्राप्त पतिकी सेवा करना चाहिये। अतः आपको अधिकार है। जिसके साथ आप चाहें उसी के साथ मेरा ब्याह कर दें।

बहुत हुआ, जैन धर्म नीति की उत्तमता की हद्द होगई। मैंने तो आज तक एक भी ऐसा शास्त्र नहीं पढ़ा जिसमें यह आज्ञा दी गई हो कि यदि पिता पुत्री

को पति पसन्द करने की आज्ञा दे तो पुत्री पिता को निर्लज्ज समझे और जैन-शास्त्रों की ऐसी आज्ञा भी कहीं देखने में नहीं आई जिसमें यह लिखा हो कि वृद्ध रोगी, बाल, निर्दय या निर्लज्ज पुरुष के साथ पिता कन्या को देना चाहे और कन्या जानती हुई भी उससे बचने का प्रयत्न न करे वाह क्या खूब ब्याह नहीं होने के पहिले ही आनेवाली बला से बचने का प्रयत्न करना तो 'अधर्म, होगया और जान बूझकर कुए में गिरना 'धर्म, ठहरा।

बिचारी सुरसुन्दरी ने पिता की आज्ञानुसार पति पसन्द किया (उसने ऐसा दुराग्रह नहीं किया था कि मुझे यही पति चाहिये) और वर भी उसने ऐसा पसन्द किया कि जिसमें बल (जो क्षत्रियोंका भूषण है) और गुण (जो मनुष्यता का लक्षण है) दोनों मौजूद थे। तथापि यह जैन कथाकार उसको दोष देता है और ऐसी सुन्दर पसन्दगी करना जिस गुरुने सिखाया उस गुरु को कुगुरु बनाता है और सीमा बाहर की मूर्खता पूर्ण शील की व्याख्या करने वाली छोटी लड़की जो कुछ बोलती है उसी में उसे उत्कृष्टता और पवित्रता दिखाई देती है।

इस चरित्र को लिखते समय शायद लेखक को क्षत्रियों के 'स्वयम्बर, वाले रिवाज का खयाल नहीं होगा या वह ऐसे अनार्य्य देश का रहने वाला होगा कि जहां एक भी कर्मवीर क्षत्री का घर नहीं होगा। अथवा मध्यकाल में जैनियों और हिन्दुओं ने स्त्रियों के पैरों में पराधीनता की जो बेड़ी डाली थी वह उसे ढीली मालूम हुई होगी इसलिये उसने सख्त बनाने का यह प्रयत्न किया होगा। चाहे कुछ भी हो परन्तु अपनी अज्ञानता को या अपनी जाल को जैनधर्म की आज्ञा के नाम से प्रचार करने का प्रयत्न करना बड़ी भारी धृष्टता है।

'श्रीपाल, चरित्र के जन्मदाता की धृष्टता यहीं पूरी नहीं होजाती है। उसने जिस तरह से और जिस पुरुष के साथ उस 'अज्ञान कन्या, का ब्याह करवाया है वह तो बहुत ही निन्द्य और त्रासदायक है। 'अज्ञान कन्या, मैं इसलिये कहता हूं कि अर्जिका ने वास्तव में उसको दुनियां की किसी भी विद्या (Science) और कला (Art) का ज्ञान नहीं दिया था। यह बात सहज ही में अनुमान से जानी जासकती है। जैनशास्त्रों की स्पष्ट आज्ञा है कि कोई जैनसाधु तैरनेकी विद्या, नाचनेकी विद्या, सङ्गीतशास्त्र, वैद्यकशास्त्र इत्यादि नहीं सिखा सकता है इसलिये यह तो स्पष्ट होगया कि कवि ने जिन विद्याओं की दुनियवी शास्त्रों की गिनती कराई है वे साध्वीने तो कभी नहीं सिखाई होंगी। हाँ उसने तो यह धर्म विद्या सिखाई होगी कि कर्माधीन होकर बैठे रहो और इस धर्म की उत्तमता का गर्व कर दूसरे धर्म के लोगों को

मूर्ख, मिथ्यात्वी कहने में आनन्द मानते रहो और इस शिक्षा को ही कथाकार ने शायद 'सर्वज्ञान, समझा था।

परन्तु—राजा पुत्री के उत्तर से बहुत नाराज हुआ, और मैनासुन्दरी के लिये कोई अयोग्य घर खोजने के लिये मुसाफिरी के लिये रवाना होगया। फिरता फिरता वह उसी वन में जा पहुंचा—जहां राजा श्रीपाल अपने साथियों सहित रहता था। इन दोनों राजाओं से जो वार्तालाप कराया है वह लेखक कितनी बुद्धि रखता था सो साफ बता देता है। राजा पहुपाल ने श्रीपाल को कहा—"मैं तो यहां वन-क्रीड़ा करने के लिये आया हूं परन्तु आप यहां किस लिये आकर रहने लगे हैं और क्यों जङ्गल में नगर सा बना रक्खा है?,, श्रीपाल ने उत्तर में आद्योपान्त अपनी कथा सुनाई उससे पहुपाल प्रसन्न हुआ और बोला—मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूं। (एक राजा के बड़े भारी कष्ट की बात सुन कर दूसरा राजा प्रसन्न हो, यह बात तो बिलकुल अश्रुत पूर्व है। अर्थात् पहिले कभी ऐसा नहीं सुना गया था। हम तो समझते हैं दूसरे जैन-ग्रन्थकारों ने भी ऐसी बात तो कभी नहीं लिखी होगी; जैनग्रन्थकारों की क्यों? बिल्कुल थोड़ी अक़ल वाला भी कभी ऐसी बात नहीं लिखेगा) "तुम्हें जो कुछ इच्छा हो वह मुझ से मांग लो,; (एक राजा नवीन व्यक्ति को और वह भी राजा के समान व्यक्ति को कहे—"मांगलो,, यह भी लेखक की बुद्धिमत्ता की बलिहारी है) श्रीपाल ने कहा—'आप प्रसन्न होकर वरदान देते हैं, तो अपनी पुत्री "मैनासुन्दरी, मुझे दीजिये,, (वाह क्या खूब! दो चार मिनिट के वार्तालाप में ही श्रीपाल ने एकदम एक राजा से स्वयं कोढ़ी होते हुए उसकी लड़की मांगने की हिम्मत की; क्या ऐसा भी जमाना था? ×) पहुपाल ने कहा—"तुम को मैंने अपनी छोटी लड़की मैनासुन्दरी दी। बस अब शीघ्र ही मेरे साथ चलो और मैनासुन्दरी का पाणि ग्रहण कर सुखी बनो" बणिक, ब्राह्मण तो क्या मगर एक शूद्र के घर में भी कभी इस तरह कन्या की याचना और स्वीकारता नहीं होती है; तब एक क्षत्रिय की—सामान्य क्ष-

---

× श्रीपाल ने लड़की मांगी सो तो ठीक; परन्तु लड़की भी कैसी? मैनासुन्दरी—जिस पर कि राजा कुपित होरहा था। क्या श्रीपाल को उस समय अवधिज्ञान होगया था? या और कोई बात थी कि जिससे उसने मैनासुन्दरी को मांगा। हमारे खयाल में तो लेखक के दिल में मैनासुन्दरी को प्रचक्र में फँसाने की धुन सवार थी इसीलिये उसने पूर्वापर का विचार किये बिना ही झूंठ श्रीपाल के मुंह से मैनासुन्दरी को याचना के शब्द कहला दिये। (अनुवादक)

त्रिय नहीं एक राजा की—यह रीति अज्ञान लेखक के मनोराज्य के सिवा दूसरे स्थान पर कैसे होसकती है !

मन्त्री शायद बुद्धिमान था (सम्भव है कि उसने जैनधर्म नहीं सीखा हो) उसने राजा से प्रार्थना की—"हे नाथ ! बड़ा भारी अनर्थ होरहा है देनेके पहिले बहुत विचार करना चाहिये। कहां आपकी सोलह वर्ष की सुकुमार कन्या और कहां यह अंगोपांग हीन गलित शरीर कोढ़ी ? ऐसा अकार्य्य करना आपके लिये सर्वथा अनुचित है। इस कार्य से लोग निन्दा करेंगे और आप पर हँसेंगे। कन्या अपने माता पिता के आधीन होती है इसलिये उसके हिताहित का विचार करना इनका (माता पिता का) पहिला कर्तव्य है। यदि लड़की ने कुछ भूल की हो तो भी उसे क्षमा करना चाहिये। स्त्री जाति से वैर लेना क्षत्रिय धर्म नहीं है। नीतिशास्त्र का वचन है—बालक, वृद्ध, स्त्री, निर्बल, पशु, आधीन, शरण में आया हुआ और भगोड़ा इनमें पर क्षत्रीको कभी क्रोध नहीं करना चाहिये,, (सम्पूर्ण पुस्तक में लेखकने किसी जैन-गुरु या जैन श्रावक के मुंह से ऐसे उदार विचार नहीं कहलाये हैं)

मन्त्री की बात से राजा कुपित हुआ और मन्त्री चुप होगया। राजा श्रीपाल को लेकर अपने देश में गया और पति कैसा है उसका मैनासुन्दरी को सच्चा वृत्तान्त सुनाया। * लेखक लिखता है—'पिता के वचन सुनकर कुमारी चित्त में बहुत प्रसन्न

* हद हुई विचारे पितृ-प्रेम का खून हुआ। संसारके इतिहासमें आजतक एक भी ऐसी घटना नहीं हुई जिससे यह सोचा जाता कि पिता अपनी सन्तान प्रति इतना क्रूर होसकता है। इतिहासकारों ने औरङ्गजेब को बहुत ज्यादा क्रूर बताया है, परन्तु इतना क्रूर तो वहभी न होसका कि अपनी सन्तान का सर्वनाश कर देता। एकबार औरङ्गजेब का लड़का किसी कारण वश औरङ्गजेब से प्रतिकूल होगया। औरङ्गजेब ने किसी तरहसे यह अफवा सुनी कि मुहम्मद मारा गया है उसका कलेजा दहल गया। पत्थर के कलेजेसे दो चार आंसू की बूंदें टपक पड़ीं और सुनिये औरङ्गजेब ने शाहजहां को आगरे में कैद करके रख दिया और सताया, अपने सब भाइयोंका खून करवाया, जिसके सुनने से शाहजहां आधा पागल होगया, परन्तु अन्त में औरङ्गजेब ने जब शाहजहां के पास गया तब शाहजहां अपने सब दुःखों को भूल गया और उसने औरङ्गजेबको गलेसे लगा लिया पाठक विचार सकते हैं कि अपने साथ इतनी क्रूरता का बर्ताव करने वाली सन्तान को भी पिता जब क्षमा करके गले से लगा लेता है, तब कैसे यह अनुमान किया जा सकता है, कि मैना के केवल इतना कहने पर

हुई' ग्रन्थकर्त्ता को स्त्री हृदय का अनुभव करने के लिये दूसरी पर्याय स्त्री की मिले और सोलह वर्ष की पूरी जवानी में किसी कोढ़ी पति के साथ उसका व्याह होजाय तब पता चले कि "बहुत प्रसन्नता कैसे हुआ करती है,, कन्या को क्या अवधिज्ञान था ? क्या कन्या को यह मालूम था कि कोई न मान सके इस तरह से वह एकदम आराम हो जायगा और अटूट राज्य सम्पदा पावेगा ? किस आशा से उसे 'बहुत प्रसन्नता हुई थी ?' हम तो इसकी कुछ कल्पना भी नहीं कर सकते ।

राजा ने उसी दिन व्याह कर देने का निश्चय किया । ब्राह्मण, प्रजाजनों और राजकर्मचारी आदि सबने (जिनमें मनुष्यत्व था उन सबने) राजा को इस अनुचित कार्य से रोका; परन्तु राजा ने किसी की न सुनी और अन्त में कुपित होकर बोला—बस, चुप रहो । अबतक मैं तुम्हारे मन के लिये सब कुछ सुनता रहा था परन्तु अब न सुनूंगा । सेवक का कर्त्तव्य है कि वह स्वामी की इच्छानुसार वर्ताव करें ?, अब ज्यादा बोलोगे तो सजा पाओगे । अफसोस ! हमारे इन कथकड़ों ने नीति और धर्म के बहाने कर्त्तव्य का किस तरह गला घोट दिया है 'क्या सेवक का कर्त्तव्य है कि स्वामी की इच्छानुसार वर्ताव करे स्वामी (पति, पिता, राजा, सेठ, या कोई अन्य अधिकारी) चाहे कैसी ही आज्ञा करे—मूर्खतापूर्ण, आत्मघातिनी,

---

"हे पिता ! मैंने............(देखो पृष्ठ ४)" पहुपाल नाराज होगया होगा और उसने अपनी पुत्रीको एक कोढ़ीके हाथ हड़ हड़ते काल के हाथ—सौंप दिया होगा । मानव स्वभाव के विरुद्ध यह तो किसी सूरत में भी नहीं माना जासकता कि पिता पुत्री का घनिष्ट प्रेम उक्त प्रकार की तुच्छ बात से एकदम टूट गया होगा । शब्द भी ऐसे नहीं है, जिनसे इतना भयङ्कर क्रोध उत्पन्न हो और पहुपाल अपनी पुत्री का सर्वनाश कर दे । लेखक को मैनासुन्दरी का चरित्र विचित्र चित्रित करने की और जैनधर्म का उत्कर्ष दिखाने की धुन थी, इसलिये उसने ये सब बेसिर पैर की बातें लिखी हैं । मगर इस तरह लिखने से उल्टा जैनधर्म का अपकर्ष दिखाई देता है और मैनासुन्दरी के शब्दों को पढ़ कर तत्काल ही एक बुद्धिमान समझ जाता है कि जैनधर्म कुछ नहीं था । यह भी एक विचित्र बात है (वह किस लिये ? उसको चिढ़ाने के लिये) कि पिता ने पुत्री को कोढ़ी श्रीपाल का सच्चा वृत्त सुनाया । दुनियां की जङ्गली से जङ्गली जाति के इतिहास में भी ऐसी बात नहीं मिलेगी, तब यह कैसे सम्भव है कि जैन पुराणों के अनुसार एक सुधरे हुए काल के गुण और विद्या से प्रेम करने वाले राजाने अपनी पुत्री को उक्त बात कही हो । (अनुवादक)

अनीतिपूर्ण, अधर्ममय, आज्ञा करे—उस आज्ञा का चुपचाप पालन करना ही सेवक का (पत्नी का, पुत्र का, प्रजा का अथवा छोटे दर्जे के नौकरों का) कर्त्तव्य मानना, धर्म या वफ़ादारी मानना कितना लज्जास्पद है ? यह क्या कम पतित अवस्था है ? और मजा यह है कि ऐसी अवस्था, ग्रन्थकर्त्ता के कथनानुसार जिस समय में थी वह समय 'स्वर्ण युग, के नाम से प्रसिद्ध किया जाता है। हमें कहने दो कि ऐसे 'स्वर्ण युग, की अपेक्षा आज का 'कलियुग, हजार दर्जे अच्छा है। कि जिसमें राजा के अन्यायाचरण के विरुद्ध प्रजा और अधिकारी लोग प्रतिकूल खड़े हो सकते हैं। कुछ समय पहिले इन्दौर के महाराज ने एक स्त्री पर दूसरा विवाह किया। मन्त्री सरनारायण चंदावरकर ने इसको विरोध किया; परन्तु उनका कुछ वश नहीं चला इसलिये वे चुप हो रहे और उन्होंने कामसे अस्तीफ़ा नहीं दिया। सर्वसाधारण ने इस भीरुता के लिये खुल्लमखुल्ला उनको उपालम्भ दिया और इस उपालम्भ देने को अपना 'कर्त्तव्य, समझा। राजा पहुपाल के राज्य में क्या एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जो राजा को इस कार्य से मुंह मोड़ने को विवश करता और यदि राजा नहीं मानता तो राजा की प्रजा बनने से नहीं तथापि राजा का एक कार्यकर्त्ता बनने से तो मुंह मोड़ता और नैतिक धर्म बताता। जिस समय में एक साधारण भीरुता पर ही प्रजा जिसको बुरा बता सकती है उस समय को 'स्वर्ण युग, कहना छोड़कर जिस समय में भयङ्कर कृत्यकी भी कोई प्रतिकूलता नहीं कर सकता था ऐसे समय को 'स्वर्णयुग, कहना हम तो अपनी मान-हानि समझते हैं।

सुन्दर कन्या और कोढ़ी दोनों का विवाह क्या था एक फ़ारस था। लोग उस फारस को देखने के लिये इकट्ठे हुए। कई उदार और गम्भीर पुरुषों के हृदय को इस अन्याय से दुःख हुआ। लेखक कहता है—"श्रीपाल राजा के हर्ष का तो कुछ ठिकाना ही नहीं था" कथन बिल्कुल ठीक है। जिस रत्न की प्राप्ति के लिये, हजारों प्रयत्न करने पड़ते हैं, मौके पर खून भी बहाना पड़ता है, ऐसा स्त्री-रत्न कोढ़ी अवस्था में बिना प्रयास जिसको मिल जाय वह यदि प्रसन्न नहीं हो तो और क्या हो ? एक युवती का जीवन नष्ट करने में एक सज्जन पुरुष को आनन्दित होना (और इस कथा का लेखक गवाह दे कि होना ही चाहिये) कितना वेजोड़ और अन्यायपूर्ण है ? आनन्द माननेवाला पुरुष भी कोई साधारण नहीं बल्कि बड़ा भारी विद्वान् कि जिसने धार्मिक और व्यावहारिक ज्ञान का बहुत अच्छा अभ्यास किया था जो "चरमशरीरी,, था और जिसे उसी भव से मोक्ष होनेवाला था ऐसे पुरुष के लिये यह कहना कि एक अबला का जीवन नष्ट करने के कार्य्य में उसे 'आनन्द' हुआ और ऐसे

आनन्द को अच्छा बताना कितनी भ्रष्ट नीति है ? यदि ऐसे नीति ज्ञान को जैनधर्म के ग्रन्थ या काव्य-कर्त्ता लोग उत्तम बताते हों और उसका अभिमान रखते हों तो रक्खें। मैं तो ऐसी शिक्षा को महापाप बताऊँगा और जो आँखें खोल कर अपने हिताहितका विचार करनेवाले होंगे उनको ऐसे ग्रन्थोंसे दूर रहनेकी सम्मति दूंगा।

फारस खतम हुआ लग्न क्रियायें पूरी हुईं। वर और कन्या अपने निवास स्थान को गये। लेखक लिखता है—"राजा ने पुत्री को बहुत सा द्रव्य और वस्त्रा-लङ्कार दिये। एक हजार दास एक हज़ार दासियां हजार हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे, गायें, भैंसें, ग्राम पुर, पट्टण आदि दहेज में दिये,, हजार बिना तो बात भी नहीं। हजारों हाथी, घोड़े दहेज,में देने वाला राजा कितना बड़ा होगा ?

श्रीपाल नगर छोड़कर मैनासुन्दरी सहित जहां अपना निवास-स्थान था वहां गया। वहां श्रीपाल मैनासुन्दरी को कहने लगा—तुम्हारे मुख की ज्योति देखकर चन्द्रमा की रोशनी फीकी पड़ती है; तुम्हारे मधुर शब्द सुन कोकिला मद-गलित होती; तुम्हारे नेत्र युग्म को देख हरिणी लजाती है; तुम्हारे गालों को देख विकसित गुलाब सिर झुकाता है। तुम्हारी शुक कैसी नासिका, अरुण कुसुम के समान ओष्ठ और मुक्त-माल के समान दन्त-पंक्ति बहुत ही सुन्दर मालूम देते हैं। (और अभी ले-खक को वर्णन में कसर मालूम हुई इसलिये आगे बढ़कर कहता है) कंचन कुम्भ के समान कुच, सिंह के समान कमर, कदली वृक्ष के समान जङ्घा और स्पर्श बहुत रूक्ष होने पर भी मृदु, बहुत ही सुन्दर दिखाई देते हैं। और मैं कुरूप, कुष्ट व्याधि से पी-ड़ित हूं मेरा शरीर दुर्गन्धि से भरा हुआ है। अतः तुम मुझ से दूर रहो। तुम्हें देख कर मुझे अत्यन्त करुणा आती है। (आनन्द हुआ या फिर यह करुणा कहां से आ-गई ?) मुझे दुःख है, कि तुम्हारे समान कोमलाङ्गी को मुझसा पति मिला। (पति मिला क्यों कहते हो ? यूं क्यों नहीं कहते कि मैं ने स्वयं तुम से व्याह करने की या-चना कर पाप किया है। दैव का दोष नहीं है; परन्तु अपना ही दोष है और वह भी चरम शरीरी, का दोष है साधारण मनुष्य का नहीं।)

मैनासुन्दरी के मुख से सतीत्व के जो शब्द कहलाये हैं उनके विरुद्ध हमें कुछ नहीं कहना है। क्योंकि अब तो वह अपनी इच्छानुकूल स्वामी पसन्द करके पली हुई थी। दूसरे दिन प्रातःकाल ही वे चैत्यालय में गये। वहां एक निर्ग्रन्थ मुनि से मैनासुन्दरी ने पूछा—"कोई ऐसा प्रयत्न बताइये कि जिससे मेरे पति का रोग नष्ट होजाय,, मुनि ने उत्तर दिया—"यदि यह सम्यग्दर्शन सहित पांच अणुव्रत और सप्तशील (तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत) अङ्गीकार कर यथाविधि सिद्ध

चक्र व्रत साधन करे तो इसके सारे रोग शोक दूर होजायँ,, सिद्धचक्र की व्याख्या पूछने पर मुनि ने अमुक दिनों में तप और सामायिकादि करने को कहा और यह भी कहा कि आठ वर्ष पर्यन्त इस तरह से तप करके फिर सात क्षेत्रों में द्रव्य खर्चना चाहिये। यहां मैं व्रतों के विरुद्ध कुछ कहना नहीं चाहता। तप का जो स्वरूप मैं ने हितेच्छु में प्रकाशित किया है उसके अनुसार तप करने से अवश्यमेव लाभ होता है यदि यहां ऐसा बताया जाता कि स्वाध्याय, कायोत्सर्ग, ध्यान और उपवास यथाविधि करने का नाम तप है, और प्रत्येक की अच्छी तरह से विस्तार पूर्वक खूबियां समझाई गई होतीं तो बहुत ही श्रेष्ठ होता और पाठकों को उससे बहुत कुछ लाभ पहुंचता; परन्तु लेखक ऐसा न कर सका। यदि इस तप की व्याख्या से पाठक यह समझें कि आंखें बन्द कर उपवास किये करना और मन्दिरों का ढेर लगाये जाना ही तप है; तो मैं सोचता हूं कि ऐसे ग्रन्थों की अपेक्षा ग्रन्थों का न होना ही उत्तम है। इस व्रत की आज्ञानुसार प्रति मास आठ उपवास करने से और अगाध आत्मिक शक्ति की भावना भाने से मनुष्य-करने वाला मनुष्य-रोग मुक्त हो सकता है। इस में कोई असम्भवता नहीं है * परन्तु उपवास कोई और करे और रोग किसी और ही का मिट जाय यह बात तो सर्वथा असम्भव है। इस कथा में तो कथा लेखक कहता है कि मैनासुन्दरी ने आठ वर्ष तक आठ २ दिन के आठवार उपवास करने के बजाय केवल एकबार ही उपवास किये थे। वह नित्य प्रति प्रभु की प्रतिमा का पूजन कर गन्धोदक लाती थी और उस गन्धोदक को श्रीपाल व उसके ७०० अन्य साथियों पर छिड़कती थी इससे केवल आठ दिनमें ही श्रीपाल अपने ७०० सहचारियों सहित रोगमुक्त होगया और पहिले की अपेक्षा भी विशेष कांतिवान साक्षात् कामदेव के समान रूपवाला बन गया। यदि यह बात सच्ची हो, यदि यह सम्भव हो कि एक स्त्री के आठ दिन तक उपवास करने से उसका पति उसके ७०० साथियों

---

* 'अमृतसागर, नाम के एक वैद्य ग्रन्थ में लिखा है, कि विरुद्ध अन्न पान खाने पीने से, चिकिने और भारी पदार्थ खाने से, मल मूत्रादि का प्रवाह रोकने से, बहुत आहार करने से, जुलाब लेने के बाद कुपथ्य का सेवन करने से, मछलियां विशेष खाने से और स्त्री सेवन से कुष्ट रोग उत्पन्न होता है। मेक फेडन पाश्चात्य विद्वान् जो प्राकृतिक उपचार से बिना औषधि के रोग मिटाता है कहता है कि उक्त प्रकार के कारणों से जो व्याधि होती है, वह उपवास करने से, खुली हवाका सेवन करने से, कसरत, तन्दुरस्ती की भावना भाने से, मिट सकती है।

सहित अच्छा हो सकता है, तो आज भी यह बात सत्य क्यों नहीं होती ? क्यों आज भी एक के उपवास करनेपर दूसरा रोग मुक्त नहीं होजाता ? आठ दिन तक उपवास करना; जिनेश्वर भगवान की पूजा करना और नित्य प्रति गन्धोदक लाकर बीमार पर छिड़कना आज हरएक कर सकता है। (यह बात भी ध्यानमें रखने योग्य है कि गुरु ने यह विधि आठ वर्ष तक के लिये बताई थी) तो फिर आज जैनी लोग खास साधु लोग भी डाक्टरों या वैद्यों की दवा किस लिये खाते हैं ? क्यों व्यर्थ पैसे को धूल में मिलाते हैं ? और क्यों बहुत दिनों तक रोगी रहते हैं ? अङ्गरेजी प्रवाही दवा में प्रायः "स्पिरिट तो मिली हुई ही होती है फिर ऐसी दूषित दवा क्यों खाते हैं ? दिगम्बर और श्वेताम्बर परोपकारी धनिक (स्वर्गीय सेठ मनसुख भाई भग्गू के समान) क्यों मुफ्त दवा देने वाले औषधालय स्थापन करते हैं ? और क्यों उनको चिरस्थायी बनानेके लिये लाखों रुपये बर्बाद करते हैं ? श्रेष्ठ मार्ग तो यह है कि सारे रोगियों को 'सिद्धचक्र व्रत, करवाना और उन्हें बगैर ही खर्चे रोगमुक्त कर कामदेव के समान रूपवान बनाना इससे बहुत बड़ा लाभ होगा कि जैनधर्म की खूब प्रभावना होगी। इस व्रत में आठ दिन तक बराबर उपवास करना भी जरूरी नहीं है; क्योंकि ग्रन्थकर्त्ता ने साफ़ लिखा है कि बेला तेला करने से भी काम चल सकता है। हम आशा करते हैं कि हमारे जैन साधु और ग्रन्थ लेखक आज से अपने खास इलाज (सिद्धचक्र व्रत) के द्वारा संसार को नीरोग बनाने का उद्यम कर अपने माने हुए धर्म की महिमा बढ़ायेंगे और कुष्ट रोग, रक्त पित्त का रोग, क्षय का रोग और भगन्दर का रोग जो असाध्य माने जाते हैं इस मान्यता को झूठी ठहरायेंगे। हमें यह आशा तो जरूर रखना ही चाहिये कि हमारे साधु और जैन कथा लेखक कभी किसी अस्पताल या औषधालय के द्वार पर नहीं जायेंगे।

आठ दिन तक मैनासुन्दरी ने व्रत का पालन कर गन्धोदक के छींटे दिये जिससे श्रीपाल और उसके साथी अच्छे होगये। कुछ दिन के बाद श्रीपाल की माता के लिये पुत्र का वियोग बहुत असह्य होगया और वह इससे मिलने के लिये उत्सुक हुई। कथाकार लिखता है कि वह पुत्र के वियोग से रात दिन बेचैन रहती थी और उससे मिलने के लिये तरसती रहती थी; परन्तु प्रजा हित के लिये वह सब कुछ सहती थी "यद्यपि उसको पुत्र से बहुत ज्यादा स्नेह था; इतना स्नेह था कि उसके न मिलने से उसका शरीर सर्वथा क्षीण होगया था तथापि प्रजा हितैषिणी रानी ऐसी स्थिति में भी पुत्र को बुलाकर अपने पास रखना नहीं चाहती थी, क्योंकि जिस काम के करने से अपना मन प्रसन्न होता है, परन्तु सर्व साधारण को दुःख पहुंचता

है वह काम कभी महान् आत्मायें नहीं करतीं,, परन्तु कथा लेखक की सामान्य बुद्धि (Common sense) का अन्दाजा इसीसे लगाया जा सकता है कि प्रजा हित के लिये पुत्र को राज्यमें बुलाना अच्छा नहीं लगा सो तो ठीक ही हुआ, परन्तु यदि वह पुत्र के पास जाकर रहने लग जाती या उससे जाकर मिल आती तो प्रजा की क्या हानि होती थी ? मगर हमारे इस कथा लेखक को जैन दृष्टि से पुत्रवत्सलता कुछ और ही मालूम हुई होगी इसी लिये उसने इस बात का करना अच्छा नहीं समझा था। स्वकाय-रक्षणी माता ऐसा साहस तो नहीं कर सकी, परन्तु एकबार एक जैनमुनि आये उनसे उसने अवश्यमेव अपने पुत्रकी खबर पूछी थी। "परमदयालु शत्रु और मित्र दोनों को सामान्य दृष्टि से देखने वाले परम दिगम्बर मुनि ने अपने अवधिज्ञान के द्वारा श्रीपाल का सारा आनन्ददायक समाचार कह सुनाया,, यह सुनकर रानी ने अब अपने पुत्र से मिलने में कोई हानि नहीं देखी इसलिये अपने देवर की आज्ञा लेकर पुत्रवत्सला माता श्रीपाल से मिलने के लिये गई। यहां यह बात भी विचारणीय है कि संसार और संसारके सब सम्बन्धों से मुक्त मुनिको अपनी अवधि क्या ऐसे प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिये उपयोग करना उचित था या अनुचित? आगे हम यह देख सकेंगे कि इस कथा में कथाकार ने कई स्थानोंपर अवधिज्ञानियों से इसी तरह श्रीपाल की सेवा करवाई है अगर मुनि इस प्रकार सांसारिक झगड़ों से मुक्त नहीं रह सकते थे तो फिर विचारे वस्त्रोंने क्या अपराध किया था कि उनका सर्वथा त्याग कर दिया गया था।

राणी पुत्र के पास गई। पुत्रवधु ने उसका बहुत सत्कार किया श्रीपालने माता से कहा कि यह सब प्रताप मैनासुन्दरी का है। उस समय में राणी ने जो कुछ आशीर्वाद दिया वह भी खास विचार करने योग्य है। उसने कहा—' हे पुत्री! तू सैकड़ों राणियों में पट्टराणी होना,, याद रखना चाहिये मैनासुन्दरी श्रीपाल को नवजीवन और विपुल द्रव्य प्रदान करने वाली पहिली ही पत्नी है ग्रन्थकार ने इससे पहिले श्रीपाल के व्याह का उल्लेख नहीं किया है इससे यह तो राज्य नियमानुसार कि पहिली स्त्री ही पट्टराणी होती है स्वयं सिद्ध है कि मैनासुन्दरी ही श्रीपाल की पट्टराणी थी मगर यह आशीर्वाद तो कुछ और ही कहता है इसका अभिप्राय तो यह है कि "तू ने श्रीपल को नवजीवन प्रदान किया है इसके बदले में तेरी छाती पर सैकड़ों (यह कहो हजारों क्योंकि लेखक ने आगे चलकर कथा के नायकका हजारों स्त्रियों के साथ व्याह करवा दिया है) सपत्नियों-सौतोंका साल होवे !,, वाह कैसी कृतज्ञता! कैसा जैनत्व! कैसी आदर्श शिक्षा और वह भी सा-

मान्य पुरुष की नहीं मगर "चरमशरीरी,, उसी भवमें मोक्ष जानेके लिये निर्मित हुए पुरुष की माता की।

कुछ काल के बाद मैनासुन्दरी के पिता पुहुपाल के हृदय में अपनी पुत्री के देखने की इच्छा उत्पन्न हुई उससे भी श्रीपाल की माता के समान ही पुत्री के वियोग का दुःख होने लगा और उसका शरीर सूखने लगा यह देख कर मैनासुन्दरी की माता इसका इलाज पूछने के लिये जिन मन्दिर में मुनिराज के पास गई। मगर वहां जाकर उसने कौतूहल देखा वह क्या देखती है कि मुनिराज के पास उसकी लड़की मैनासुन्दरी बैठी हुई है और उसके साथ ही बराबर में एक खूबसूरत नौजवान (जो श्रीपाल था) बैठा है राणी ने यह सोच कर कि मैनासुन्दरी ने शायद अपने कोढ़ी पति को छोड़ कर इससे फक्कड़ नौजवान से दोस्ती कर ली है, मैनासुन्दरी को हज़ारों गालिया मन ही मन दीं। पुत्री ने माता को देखकर प्रणाम किया और सारा हाल कह सुनाया; श्रीपाल ने भी उसके कथन की पुष्टि की। सुन कर रानी को सन्तोष हुआ और अपने जामाता-जंवाई और पुत्री को लेकर महल में गई। राजा भी इनकी उत्तम स्थिति देखकर सन्तुष्ट हुआ। कुछ दिनों के बाद श्रीपाल के मन में अपना राज सँभालने की अभिलाषा उत्पन्न हुई। मगर अपने चचा के हाथ में गया हुआ राज्य सीधी तरह से मिलना कठिन समझ उसने देशाटन कर धन जन एकत्रित करने के बाद चचा से युद्ध कर अपना राज्य लेने की ठानी। मैनासुन्दरी ने अपने पति की बात पसन्द की; परन्तु साथ ही उसने पति के सङ्ग जानेकी भी इच्छा प्रगट की। कथाकार ने यद्यपि आगे चलकर लिखा है कि अकेले श्रीपाल ने हज़ारों आदमियों को परास्त किया था; परन्तु यहां श्रीपाल के मुख से कहलाया है कि—"परदेश में सहायकों के बिना स्त्री को लेजाना उचित नहीं है" पतिव्रता स्त्री ने नम्रता सहित आग्रह पूर्वक साथ जानेके लिये विनती की। इस नम्र प्रामाणिक और न्याय-सङ्गत विनती के उत्तरमें स्त्रीके भारी उपकार ऋण में दबे हुए श्रीपाल के मुंहसे लेखक ने कैसे मूर्खता पूर्ण शब्द कहलाये हैं कि जिन्हें पढ़कर एक सामान्य मनुष्य भी नायक से घृणा करने लगेगा। श्रीपाल ने कहा—"स्त्रियों का तो स्वभाव ही ऐसा है। हज़ार उपदेश दो तो भी स्त्रियां अपनी आदत नहीं छोड़तीं; कार्य्याकार्य्य का विचार करना तो ये जानती ही नहीं बस मुझे छोड़ दो" वाह! कथा का नायक कैसा सज्जन है?

अन्त में हारकर मैनासुन्दरी ने श्रीपालको अकेला जानेकी सम्मति दी। रवाना होते वक्त मैनासुन्दरी से कवि कहलाता है—"यदि आप जाते हैं तो जाइये; परन्तु

इस दासी के पास से दासत्व कराने की बात सदा ध्यान में रखना × × × × मिथ्या देव, गुरु और धर्म का कभी विश्वास न करना और खास कहने की बात यह है कि स्त्री जाति का स्वभाव बहुत ही चपल होता है इसलिये किसी स्त्री पर विश्वास न करना। बड़ी को माता, युवती को बहिन और छोटी को पुत्री समझना और आज अष्टमी से बराबर बारह बरस गिनकर इसी तिथि को वापिस घर लौट आना। यदि आप अष्टमी को नहीं आयँगे तो मैं नवमी को दीक्षा ले लूंगी" इन शब्दों में से प्रत्येक शब्द अज्ञानतापूर्ण है। सारी नीति और सम्पूर्ण अध्यात्मशास्त्र के ज्ञाता पति की स्त्री (जो स्वयं भी अध्यात्मिक ज्ञान में पूर्ण बताई गई है) पति पर अविश्वास करके उस को शील पालने की शिक्षा देती है यह एक आश्चर्य्य है! स्वयं स्त्री होते हुए भी उसने स्त्रियों की मान हानि करने वाले शब्द "स्त्री जाति चपल होती है इसलिये किसी का विश्वास नहीं करना" उच्चारण किये यह दूसरा आश्चर्य्य है! स्त्री का अर्थ है 'दासत्व करने वाली दासी' ऐसी व्याख्या भी पवित्र जैन धर्मानुयायी के सिवा यदि कोई दूसरा लेखक लिखता तो वह मिथ्यात्वी, मूर्ख, अविवेकी गिना जाता। खैर कुछ भी हो मगर इतना उपदेश मिलने पर भी—शीलव्रत पालन करने की खास सूचना मिलने पर भी—यह चरमशरीरी महात्मा तो ऊपरी २ हज़ारों स्त्रियों का पाणि-ग्रहण करता ही गया। यह भी श्रीपाल की लियाकत का एक अच्छा नमूना है। जिसके रूप का श्रीपाल ने स्वयं वर्णन किया है जिसके प्रत्येक अङ्ग की शोभा का वर्णन करते श्रीपाल स्वयं नहीं लजाया जिसके प्रताप से ही स्वयं जीवित रहा और नवयौवन पाया ऐसी सोलह बरस की पतिपरायण स्त्री की छाती पर हज़ारों सौतों का साल रखना भला चरमशरीरी श्रीपाल के सिवा अन्य कौन पुरुष कर सकता था? अस्तु।

श्रीपाल अकेला ही रवाना होगया। अनेक वन, पर्वत, गुफा, सरोवर, खाई, नदी, शहर आदि से गुजरता हुआ पैदल ही चलकर वत्सनगर में पहुंचा। वहां चम्पक नामक वन में उसने किसी नवयुवक को जो कि वस्त्राभूषणों से अलंकृत होरहा था—मन्त्र जपते हुए देखा। श्रीपाल के पूछने पर उसने उत्तर दिया—"हे स्वामिन्! (अंजान पुरुष को पहिले ही वाक्य में 'स्वामिन्' कहकर सम्बोधन करे यह भी एक आश्चर्य्य है!) मेरे गुरु ने विद्या का मन्त्र दिया है मैं उसका जाप कर रहा हूं; परन्तु मेरा मन चञ्चल एक जगह स्थिर नहीं रहता इसलिये मन्त्र सिद्ध नहीं होता, इसलिये आप इस विद्या को सिद्ध करें; क्योंकि आप सहनशील दिखाई देते हैं" कुछ आनाकानी करने के बाद श्रीपाल मन्त्र सिद्ध करने के लिये बैठा और वह एक ही दिनमें सिद्ध होगया। यह सिद्ध विद्या फिर उसने उस वीर (विद्याधर) को दे दी,

(कैसे ? सिर्फ जबान से ही ?) और उसके बदले में विद्याधर ने श्रीपाल को जल-तारिणी और शत्रुनिवारिणी विद्याए दीं। वहां से रवाना होकर श्रीपाल भरोच आकर रहा। कुछ दिन बाद कोशांबी नगरी का धवल सेठ ५०० जहाज लेकर भरोच आया। पवन के वेग से ५०० जहाज खाड़ी की ओर बहे और वहीं अटक गये। इससे सेठ को बहुत चिन्ता हुई। किसी नगर निवासी ने आकर सेठ से कहा—"यह जल देव का ही कृत्य है इसलिये किसी महान् गुणी और गम्भीर पुरुष का बलिदान दोगे तो जहाज चलने लग जायँगे" यह सुनकर सेठ भरोच के राजा के पास गया। राजा की आज्ञा से गुणी पुरुष की तलाश में आदमी भेजे गये। किसी बगीचे में श्रीपाल एक वृक्ष के नीचे सोरहा था वहां आदमी गये; परन्तु उसको जगाने का कोई साहस न कर सका इसलिये आपस में घुनफुस करने लगे। इतने ही में श्रीपाल जागृत होगया और उसने गड़बड़ का कारण पूछा। आदमियों ने उत्तर दिया—"धवल सेठ के जहाज चलते करने के लिये आपका बलिदान देना है। यदि हम आपको नहीं लेजायँगे तो हम मारे जायँगे, इसलिये हम आपकी शरण आये हैं, आप हमारी रक्षा करें" (वाह ! शरण आने की कैसी अच्छी भीख है !) श्रीपाल ने उन्हें उत्तर दिया—"भाइयो ! तुम कुछ डर न रक्खो। तुम कहो तो मैं क्षण भर में करोड़ों योद्धाओं को मर्दन कर दूं और तुम कहो तो तुम्हारे साथ चलकर सेठ का काम बना दूं" (जब अकेला ही करोड़ों योद्धाओं का संहार कर सकता था तब अपना राज्य वापिस लेने के लिये सीधा अपने घर क्यों नहीं गया ? वृथा ही देशाटन कर दूसरे राज्यों से मदद लेने की खटपट किस लिये की ? श्रीपाल के चचा के पास करोड़ों की संख्या छोड़कर लाखों लड़ाकों की संख्या भी मुश्किल से थी इसलिये श्रीपाल में यदि उसके कथनानुसार शक्ति थी तो उसने दूसरों की सहायता के बिना ही अपना राज्य क्यों न ले लिया ?)

नौकरों के दीनता दिखाने से श्रीपाल धवल सेठ के पास गया। धवल सेठ उसे स्नान करा सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर बड़ी धूमधाम के साथ जहां जहाज अड़े हुए थे उस किनारे पर लेगया। वहां उसका सिर चढ़ाने के लिये तलवार उठाई गई तब श्रीपाल बोला—"ओ लोभान्ध ! ओ मूर्ख ! क्या तू यह समझता है कि तेरे लिये मैं अपना बलि दूं। देखता हूं कि तेरे पास कितने वीर सिपाही हैं ? सब शूरवीरों को मैं एक ही साथ पीस देने का सामर्थ्य रखता हूं। आवे, जिसमें शक्ति हो वह मुकाबिले के लिये आवे,, ये वचन सुन सेठ और उसके सब साथी भय से कांपने लगे और खुशामद करने लगे। अन्त में श्रीपाल को दया आई। (दया किस लिये आई ? इस दया से किस परमार्थ की सिद्धि होती थी ?) उसने सिद्ध-

चक्र का आराधन करके अपने पैर का अँगूठा जहाज से लगाया। अँगूठा लगते ही सारे जहाज तैरने लग गये। सेठ ने उसे अपने साथ सफ़र में आने की विनती की। श्रीपाल ने सेठ की कमाई का दसवां भाग मांगा और सेठने स्वीकार किया-इस लिये श्रीपाल भी उसके साथ चल दिया।

वैष्णव लोगों में सत्यनारायण की कथा पढ़ी जाती है (और व्रत विधान भी किया जाता है) उस कथामें भी सत्यनारायण के नामसे इसी तरह से जहाजों के तैरने का जिक्र आता है; परन्तु उस कथा को तो जैन लोग ढम्बग-मूर्खता बताते हैं। मगर जब जैन कल्पित कथाकार ऐसा ही चमत्कार बताता है तब वह जैनधर्म का प्रताप माना जाता है। वाह ! पदार्थो को देखने का कैसा अच्छा ऐनक-चस्मा है।

धवल सेठ के ५०० जहाज चले जारहे थे इतने में सामने से सामुद्रिक डाकुओं का एक जहाज आता दिखाई दिया। उसे देखकर सेठके साथ वाले बहादुर अपने हथियार ठीक करने लगे। इतने ही में डाकुओं का जहाज पास में आगया। डाकुओं ने सब धन माल सौंप देने की या लड़ाई के लिये तैय्यार होने की सूचना दी। सेठके शूरवीरों ने लड़ाई करना स्वीकार किया, युद्ध किया। कई डाकू मारे गये। शेष रहे वे अपने प्राण लेकर भाग गये। (ऐसे शूरवीर सिपाही जिस सेठ के पास थे वह सेठ और वे शूरवीर भी बलिदान के वक्त श्रीपाल के शब्द मात्र से कांप गये। यह बात कैसे मानी जा सकती है ?) जहाजों में फिरसे शान्ति होगई; परन्तु यह शान्ति ज्यादा देर तक न टिकी। डाकू लोगोंने अपने दूसरे समुदाय को लाकर फिरसे सेठ के जहाजों पर धावा किया और सेठको पकड़कर अपने जहाज में ले लिया। तब तक श्रीपाल यह सब 'कौतुक देखता रहा' अन्त मे श्रीपाल चुप न रह सका। उसने डाकुओं से सम्बोधन करके कहा—"ऐ-नीच पुरुषो ! क्या तुम मेरे सामने ही सेठ को बांधकर ले जाओगे ? ऐ कायरो ! ठहरो और सेठ को छोड़कर क्षमा मांगो नहीं तो अपना अन्तकाल पास आया ही समझना,, बस ! इतने शब्द सुनते ही वीर चांचियों का सामुद्रिक डाकुओं का दल कांप उठा और वह श्रीपाल के शरण में आगया। फिर सेठ को छुडाकर अपने जहाज में बिठाया और चांचियों को मित्र बना वस्त्राभूषण दिये और उन्हें प्रीति भोजन देकर रवाना कर दिया। उपकार से दबे हुए चांचियोंने अपने स्थान में संग्रहीत रत्नादि द्रव्यों से भरे हुए सात जहाज श्रीपाल के भेंट किये। अन्त में जहाज हंसद्वीप में पहुंचे और श्रीपाल तथा सेठ जिन देव के दर्शन करने की इच्छा से मन्दिर ढूंढने गये। उन्होंने एक स्वर्ण मन्दिर देखा। (स्वर्ण मन्दिर किसी ने सुना भी था ?) उसके दर्वाजे वज्र के किवाड़ों से बन्द थे। द्वारपाल ने

कहा—"अनेक योद्धा अपना बल आज़मा गये परन्तु किसी से यह दर्वाज़ा नहीं खुला और इसी से कोई भी इस मन्दिर में प्रतिष्ठित प्रतिमा के दर्शन नहीं कर सकता। श्रीपाल ने किंवाडों पर हाथ लगाया। तत्काल ही किवाड़ खुल गये। द्वारपाल ने दौड़ कर नगराधिप के पास यह खबर पहुंचाई।

यहां राजा की थोड़ी सी पूर्व कथा पर लक्ष देना पड़ेगा। उसका नाम कनककेतु था। उसके रत्नमंजूषा नामक एक जवान लड़की थी। राजा को इस बात की भारी चिन्ता थी कि कन्या का लग्न किसके साथ किया जाय। किसी मुनिको इस विषय में पूछने के लिये (क्योंकि यदि जैन मुनि ही वर कन्या के चौकठे न बैठा देंगे तो फिर और कौन बैठावेगा ?) राजा मुनि की तलाश में निकला। एक स्थानमें उसने मेरु के समान दिगम्बर जैन मुनिको देखे–जो कि मेरुके तुल्य अडग होकर ध्यान लगा रहे थे–राजा ने उनकी भक्ति की। ध्यान समाप्त होने पर राजाने पूछा—"मेरी पुत्री का पति कौन होगा ?,, मुनिने उत्तर दिया—"जो कोई चैत्यालय के वज्र समान द्वार उघाड़ेगा वही इस कन्या का पति होगा,, राजा को पहिले ही से यह बात मालूम होगई थी इसलिये उसने अपनी पुत्री को श्रीपाल के साथ ब्याह दी। (श्रीपालने अपनी पतिव्रता स्त्री के उपदेश पर पानी फिराया, उसके हकों पर भी पानी फिराया और जीवदान देने वाली स्त्रीके प्रेम का द्रोह किया।) कुछ दिन बाद श्रीपालने फिर सफ़र करनेकी तैयारी की रत्नमंजूषा को भी राजाने उसके साथ रवाना कर दी और साथमें बहुत से रत्न, दास, दासी आदि दिये। विदा करते वक्त राजाने कहा—"हे कुमार ! मैं तुम्हारी कुछ भी सेवा शुश्रूषा न कर सका इसलिये क्षमा करना, मगर सेवा करनेके लिये आपको यह दासी देता हूं इससे भली भांति सेवा करवाना,, कोई-मनुष्य (और वह भी राजा) अपने जामाता को–जवांई को अपनी लडकी के साथ दासीके समान व्यवहार करनेकी बात कहता होगा ? इसे विवेक कहें या निर्लज्जता ?

जहाज रवाना हुए। रत्नमंजूषा का रूप देखकर धवल सेठ को काम-ज्वर उत्पन्न हुआ। स्त्री प्राप्त करने के लिये उसने एक युक्ति की उसने अपने लोगों को सिखाये। लोग चिल्लाने लगे कि चौंचिये आरहे हैं। चिल्लाहट सुन श्रीपाल बांस पर चढ़कर देखने लगा। संकेतानुसार श्रीपाल समुद्र में गिरा दिया गया। जहाज आगे रवाना हुए। अब सेठ ने रत्नमंजूषा के पास एक दूती भेजी; परन्तु उसका जाना निष्फल हुआ। इसलिये सेठ स्वयमेव उसके पास गया। जब खुशामद दरामद से कुछ काम नहीं चला तब उसने जबर्दस्ती करने की कोशिश की। सती ने भगवान का स्मरण किया इसलिये जलदेव उसकी मदद को आया और उसने धवल सेठ को

मुश्कें बांध उसका मुंह काला किया और फिर इसके मुंह में मल मूत्र भर दिया। जहाज के अन्य लोगों पर अदृश्य प्रहार होने लगा। आखिरकार रत्नमंजूषा से क्षमा मांगने पर सब का छुटकारा हुआ। अस्तु।

श्रीपाल परमेष्ठी मंत्र की आराधना करता रहा, इसलिये वह समुद्र में तैरता रहा। और वह तैरता हुआ कुंकुद्वीप के किनारे जा पहुंचा। उस देश के राज सेवकों ने श्रीपाल को राज जवांई बना लिया और कारण यह बताया कि हमारे राजा सतराम के एक गुणमाला नाम की सुन्दर कन्या है। उसके लिये एक जैन मुनि ने कहा था कि जो पुरुष समुद्र तैर कर आवेगा वह तुम्हारी कन्या का पति होगा। (पहिले जमाने में मुनि क्या जगह जगह ऐसे ही धन्धे करते रहते थे? भविष्य ज्ञान का उपयोग करने के लिये क्या किसीके ब्याह की बातें बनाते रहने के सिवा उन्हें और कोई कार्य्य ही नहीं था?) खैर, गुणमाला के साथ श्रीपाल ने राजी खुशी से ब्याह करलिया। उसने अपना सब हाल भी कह सुनाया। कुछ दिनों के बाद धवल सेठके जहाज भी वहीं जा पहुंचे। सेठ अमूल्य जवाहरात लेकर राज्य सभा में आया और श्रीपाल को बैठा देखकर घबराया, उसे अपने जीवन की शङ्का हुई। सेठने भांड (बहुरूपी) लोगों को सिखा कर राज्यसभा में भेजे और उनसे कहलाया कि श्रीपाल हमारा पुत्र है। राजाने यह सोच कर कि श्रीपाल ने उसे धोखा दिया है, श्रीपाल को फांसी देने की आज्ञा दी। गुणमाला श्रीपाल के कहने से जहाजों पर गई और रत्नमंजूषा को लाकर उससे श्रीपाल का वास्तविक वृत्तान्त कहलाया। इससे श्रीपाल बच गया। एक दिन अपनी दोनों स्त्रियों के साथ बैठा हुआ श्रीपाल आनन्द कर रहा था, उसी समय में किसी ने आकर श्रीपाल से कहा—"मैं कुण्डलपुर नामक नगर के-जो कि यहांसे थोड़ी ही दूर है-राजाका दूत हूं। राजाके एक चित्ररेखा नाम की कन्या है। उसके लग्नके विषय में एक दिगम्बर मुनि से पूछा था। मुनिने आपका नाम बताया, इसी लिये हमारे राजा ने मुझे आपके पास विनती करने के लिये भेजा है,, एक महा-उपकार-कर्त्ता स्त्री का त्याग करने वाला श्रीपाल दो नवपरणीत स्त्रियों के साथ आनन्द करता हुआ तीसरी सुन्दरी मिलने की बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। दूतको सरोपाव दिया और तीसरी कन्या को भी ब्याह लाया। उसके साथ हास्य विनोद कर रहा था इतने ही में फिर एक दूत आया और उसने कञ्चनपुर के राजा वज्रसेन की विलासमती आदि ६०० कन्याओं को ग्रहण करने की श्रीपाल से विनती की। यह विनती भी एक दिगम्बर जैन मुनिकी सलाह से ही की गई थी। श्रीपालको ऐसी बातोंसे भला कब इनकार था? उसने उन ६००के साथ भी

ब्याह कर लिया और आनन्द मनाने लगा। एक दिन फिर कुम्कुम्पुर के राजा का दूत आया और उसने श्रृङ्गारगौरी आदि १६०० राज कन्याओं को स्वीकार करने की प्रार्थना की और श्रीपाल ने उनका पाणिग्रहण किया। (धन्य है ऐसे गणितज्ञ को !)

- यहां कोई जैन शायद ऐसा बचाव करेगा कि ये सारी स्त्रियां श्रीपाल के भोग निमित्त ही निर्मित हुई थीं; अन्यथा श्रीपाल के मन में उन्हें भोगने की कुछ इच्छा नहीं थी। यह तो भोगावली कर्मका प्रताप था। इसलिये हम यहां यह बताना आवश्यकीय समझते हैं कि अन्तिम १६०० कन्याओं के साथ ब्याह करने के लिये यह शर्त थी कि जो कोई उनमें से आठ लड़कियों के प्रश्नोंका उत्तर देगा वही इन लड़कियों का पति होगा इसलिये श्रीपाल उनके प्रश्नों का उत्तर देनेके लिये गया था। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि उसको अभी और कन्याओं की भूख थी। वासना तृप्ति के लिये अनुपम कन्याओंके होने पर भी जिसकी विषयेच्छा तृप्त नहीं होती थी; जो सैकड़ों युवतियों के साथ अमन चैन करता हुआ भी विशेष स्त्रियां सानन्द स्वीकार करता था ऐसे विषय-लोलुप पुरुषों के जीवन चरित्र लिखने से मनुष्य जाति का क्या उपकार होता है ? सो हमारे कुछ समझ में नहीं आता।

पाठक घबराइये नहीं इतने पर भी श्रीपाल की भूख पूरी न हुई थी इसलिये वह कोकन देशकी २००० कन्याएँ, मेवाड़की १०० कन्याएँ और तैलङ्ग देशकी १००० कन्यायें ब्याह कर लाया। इसी तरह सौरठ पतिकी ५०० कन्यायें, महाराष्ट्र पति की ५०० कन्याएँ, गुजरात की ४०० कन्याएँ और वैराट की २०० कन्याएँ भी भाग्यशालिनी हुईं। हिन्दके बहुत से प्रान्तों की कन्याओंके साथ श्रीपालका ब्याह नहीं हुआ। इसका कारण यह मालूम होता है कि कथाकार को भूगोल का ज्ञान नहीं था। यदि उसे यह ज्ञान होता तो वह सारे प्रान्तों की थोड़ी बहुत कन्याओं के साथ श्रीपाल का अवश्यमेव गँठजोड़ा बँधवा देता।

एक एक करके कन्याओं के साथ ब्याह करने ही में १२ वर्ष पूर्ण होने आये। इतने काल में सारी विद्याओं और अस्त्र शस्त्रों के पारगामी श्रीपालजी ने जैसा कि कथाकार ने हमें बताया है एक भी कार्य्य ऐसा नहीं किया जिससे उनकी शक्ति का या उनके बुद्धि वैभव का हम अन्दाज़ा लगा सकते। ग्रन्थकर्त्ता यह सिद्ध करना चाहता था कि अमुक व्रत करने से घर बैठे ही सारी सिद्धियां मिल जाती हैं इसलिये उसने श्रीपाल को घर बैठे ही हजारों कन्याएँ दिला दीं। (भला श्रीपाल को ऐसा बेपैसे का दलाल कैसे मिलता ?) इतना ही नहीं साथ ही उसने बहुत द्रव्य और हज़ारों योद्धा भी दिलवा दिये। उक्त सारी कन्याओंको, द्रव्यको और योद्धाओंको लेकर

श्रीपाल निज देश में गया और अपने चचा को पराजित कर अपना राज्य उससे वापिस ले लिया।

इतना सब हुआ; परन्तु पुत्री की इच्छानुसार वर देनेके सिद्धान्त और रिवाज की प्ररूपणा करने वाले पुहुपाल राजा पर ग्रन्थकारका जो क्रोध होगया था वह नहीं मिटा इसलिये उसने मैनासुन्दरी से श्रीपाल को कहलाया—"मेरे पिता को पराजित कर उसका मान भङ्ग करो और जब वह कन्धे पर कुल्हाड़ी रख, लँगोट पहिन कम्बल ओढ़ तुम्हारे पास क्षमा मांगने के लिये आवे तब ही तुम उसे क्षमा करो,, पाठक देखिये! जैन धर्म की फिलासफ़ी की ज्ञाता का कैसा बढ़िया आचरण है? पितृभक्ति का कैसा अच्छा नमूना है? यदि कहीं ग्रन्थकर्त्ता का कुछ चलता तो वह अपने आपको जैन बताने वाले लोगों (वास्तव में चाहे वे जैन धर्मके विरुद्ध ही सारे आचरण क्यों न करते हों) के सिवा सारे संसार के लोगों को नष्ट कर देता या कमसे कम उन्हें दास तो अवश्यमेव बना देता। शङ्कराचार्य्य के समय में ब्राह्मणों ने जैनधर्मानुयायियों की यही दशा की थी। उन्होंने सैकड़ों लोगों को जैनधर्म नहीं छोड़ने के अपराध में घानी में पिलवाये थे और सैकड़ों को दास बनाये थे। जो गुलाम बनाये गये थे उनके वंशज आज भी 'पेरिया' नाम की जाति से मद्रास में मौजूद हैं। हिन्दु लोग उन्हें अस्पर्श्य जाति के गिनते हैं और मरण पर्य्यन्त अपने आधीन रखकर दासोंकी तरह उनसे काम करवाते हैं + धर्म पन्थों के ऐसे झगड़ों के साथ धर्मतत्त्वों का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। क्या जैन और क्या ब्राह्मण दोनों वास्तव में तो धर्मतत्त्वोंके शत्रु ही हैं। वास्तविक जैनत्व और वास्तविक ब्राह्मणत्व में कुछ अन्तर नहीं है; इनमें ईर्षा, अहङ्कार और संकुचित भावों के लिये जगह नहीं है।

अब हम थोड़े में ही बतायेंगे, पूरा करेंगे—मैनासुन्दरी के ४ रत्नमंजूषा के ७ गुणमाला के ५ इस तरह सब रानियों के मिलाकर १२००० पुत्र हुए।

अन्त में गुरु का उपदेश सुनकर श्रीपाल ने दीक्षा ली और केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में चला गया (इस उच्च तत्त्व पर तो कुछ भी क्रम नहीं बताया गया)

कथा यहीं पूरी होती है। इसमें एक भी बात मुझे ऐसी नहीं मिली जो अनुकरण करने के योग्य हो। इसमें जितनी २ घटनाओंका उल्लेख किया गया है वे सारी असम्भव हैं। जो लोग यह समझते हों कि धर्म सेवन करनेवालों को उक्त प्रकार से धर्म सेवन का बदला मिलता है उन्हें चाहिये कि वे यहीं परीक्षा करके देख लेवें।

+ इस वैर का बदला चुकाने ही के लिये शायद लेखक ने उक्त गढ़न्त गढ़ी होगी। (अनुवादक)

महाप्रतापी रामचन्द्रजी का व्याह ब्राह्मणों ने एक ही कन्या के साथ करवाया और विवश राम को सीता का त्याग करना पड़ा, तब भी उन्होंने राम के हृदय में कभी एक से दूसरा व्याह करने की इच्छा उत्पन्न नहीं करवाई। यह कौन न कहेगा कि जैनियों की ऐसी कथाओं की अपेक्षा उक्त कथा विशेष उच्च कोटि का चारित्र पालना सिखाती है। पुरुषों को धर्म-कृत्य के बदले में मनमानी स्त्रियां देनेवाले और बालुक, अल्प आयु की अबला को एक पति के मरजाने पर दूसरा पति कर अपना रक्षण करने के लिये भी निषेध करनेवाले कितने स्वार्थी, अधर्मी और अन्यायी हैं?

इसी भव में जिसका मोक्ष होनेवाला है ऐसे पुरुष का चारित्र बहुत उत्तम होना चाहिये। पहिले कई जन्मोंसे उसका चारित्र गढ़ा हुआ और परिपक्व बना हुआ होना चाहिये। यह सहज ही में अन्दाजा लगाया जा सकता है कि चरमशरीरी जीव का चारित्र जनसमाज के लिये आदर्श होना चाहिये। मगर यहां तो श्रीपाल का चरित्र सर्वथा प्रतिकूल है। कथाकार ने इस चरमशरीरी का जो चरित्र चित्रण किया है इससे तो साफ मालूम होता है कि उसका चरित्र सामान्य मनुष्यों की पंक्ति में गिनने योग्य भी नहीं है। या तो श्रीपाल कोई कल्पित पात्र है और यदि वह ऐतिहासिक पुरुष हुआ है तो उसका चरित्र भी इस कथा में वर्णित चरित्र से सर्वथा भिन्न होना चाहिये। जो चरमशरीरी अथवा आदर्श पुरुषों के नाम के साथ इस कथा में वर्णन किये हुए वृत्तान्त के समान वृत्तान्त जोड़ सकते हैं उनके लिये मुझे कहना चाहिये कि वे धर्म का नाश करके जैनधर्म का कुछ भी रहस्य नहीं समझे हैं। इसके सिवाय और विशेष क्या कहा जा सकता है?

———॥ समाप्त ॥———